एक ओंकार (ੴ) सतिगुरु प्रसादि ॥

इतिहास गुरू खालसा (पंथ) अठाहरवीं शताब्दी से बीसवीं शताब्दी के मध्य तक

व

स्वन्त्रता का सिक्ख संग्राम

अथवा

सिक्ख इतिहास भाग द्वितीय

www.sikhworld.info
E-mail: info@sikhworld.info
&
jasbirsikhworldinfo@gmail.com

क्रांतिकारी जगद्गुरु नानक चेरीटेबल

द्वितीय – अंश (6)

लेखकः
जसबीर सिंघ
फोनः 0172 – 21696891
मो. 99881 – 60484

ੴ ਸਤਿਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ ॥

भाई महाराज सिंघ

सिक्ख इतिहास, भाग-दूसरा

लेखक : स. जसबीर सिंघ

क्रांतिकारी गुरू नानक देव चैरिटेबल ट्रस्ट, चण्डीगढ़
Website : www.sikhworld.info

विषय – सूची

क्रमसंख्या	शीर्षक	पृष्ठसंख्या
1.	भाई महाराज सिंघ	
2.	1857 का विद्रोह और सिख	

भाई महाराज सिंघ

(सिंघापुर के बंदीखाने में शहीद होने वाले गुरसिख)

–डॉ. कुलदीप सिंघ

दशम पिता गुरू गोबिंद सिंघ साहिब ने खालसा के रूप में जिस कौम की सृजना की थी उस का मॉडल, संत सिपाही के रूप में उन का अपना प्रभावशाली व्यक्तित्व था। उन की इसी आदर्श प्रेरणा के फलस्वरूप जब कभी भी देश कौम पर विपत्ति आई, गुरसिखों ने आगे बढ़ कर अपना सब कुछ दांव पर लग दिया। निहाल सिंघ, जो विशेष कर के भाई महाराज सिंघ के नाम से प्रसिद्ध थे, ऐसे ही सच्चे व निर्मल जीवन वाले गुरसिख थे। उन्होंने लाहौर पर केसरी निशान की जगह पर यूनियन जैक को फहराने से रोकने के लिए अपना सब कुछ कुर्बान कर दिया। पंजाब के बहादुर सिखों ने अंग्रेजों के सामने आसानी से ही घुटने नहीं थे टेके। फिरंगी, सारे हिंदुस्तान को सर करने के उपरांत, पंजाब की ओर मुड़े। फिर भी उनको यहां पर केवल अपना अधिकार स्थापित करने में ही नानी याद आ गई, बल्कि अपने अनाधिकार के कारण भी वे एक दिन के लिए चैन से न बैठ सके। उन की गुलामी व अधीनता को पंजाबियों ने मूलतः ही स्वीकार नहीं किया। 1849 से 1947 तक, 98 वर्ष तक उन की लड़ाई कभी धीमी, कभी तेज, कभी गुरीला और कभी प्रत्यक्ष, किसी न किसी रूप में जारी रही। भाई महाराज सिंघ इसी लड़ाई की एक बहुमूल्य कड़ी हैं।

भाई महाराज सिंघ जी सच्चे अर्थों में संत सिपाही थे। उनमें सच्चे नेता बनने के सारे गुण मौजूद थे। उन की निष्काम वृत्ति और संत स्वरूप ने, अमीर गरीब सब को सिख राज्य के अंतिम वर्षों में अंग्रेजों व डोगरों की कुटिल चालों के विरुद्ध कमर कसने को प्रेरित किया। जितना समय वे जिंदा रहे, चाहे स्वतंत्र रूप में या पंजाब से हजारों मील दूर सिंघापुर की धरती पर अंग्रेजों की कैद में, अंग्रेज सरकार उनके नाम से कांपती रही। उस समय के जलंधर के अंग्रेजों डिप्टी कमिशनर वैनिष्टार्ट का कहना था कि भाई साहिब कोई साधारण व्यक्ति नहीं। स्थानीय लोगों में उन का दर्जा वही है जो बहुत उत्साही व गर्मजोश इसाईयों के लिए ईसा मसीह का है। उन की साहसपूर्ण गाथाएं, हजारों लोगों ने देखी – सुनी थीं और लोगों को उनपर उतना ही विश्वास है जितना किसी पीर – पैगंबर की करामातों पर होता है। उस समय के पंजाब बोर्ड ऑफ एडमिनिस्टरेशन के सचिव, पी मैलविल ने भी वैनिस्टार्ट के उपरोक्त विचारों की पुष्टि की है। यह ठीक है कि सिखी में करामात नाम कहर का है, पर आम लोगों में उन के करामाती होने की बात फैलना, एक जिम्मेवार अधिकारी द्वारा उसकी पृष्टि करना, इस बात का द्योतक है कि वे अपने सच्चे व निर्मल, आचरण तथा जीवन एवं दृढ़ इरादे के फलस्वरूप अनहोनी को होनी में बदल देते थे। जान हथेली पर रख कर, गुरू के नाम का आसरा ले कर किसी अकेले व्यक्ति

का लाखों शत्रुओं से टकरा जाना, किसी करामात से कम भी तो नहीं। जलंधर के उस समय के कमिशनर मैकलोड के अनुसार "भाई साहिब कई पक्षों से बहुत महत्वपूर्ण व्यक्तित्व के मालिक थे। उनके पास अति का आत्मविश्वास और बुद्धिमता थी। वे इतने गहर गंभीर व बुद्धिमान थे कि उन की मन की बात का केवल उनको ही पता होता था या उस के बारे में किसी को तब ही पता चलता था जब वह उस को व्यवहारिक रूप दे लेते थे। वे न केवल कोई योजना बना सकते थे, बल्कि उस योजना को भिन्न – भिन्न व्यक्तियों की सहायता से सफल बनाने की योग्यता भी रखते थे। उनके सच्चे व उच्च आचरण से कोई भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। सिखों में ही नहीं, हिंदुओं और मुसलमानों में भी उन का अच्छा मान सम्मान था। वैनिस्टार्ट को उन के बारे में ये शब्द कहने पड़े, मैं तो चाहता था कि इस यक्ति के गौरव को नजरअंदाज कर दूं और इस से आम कैदी की तरह व्यवहार करूं। पर इस के निर्मल धार्मिक जीवन के सामने मेरी ऐसा करने की हिम्मत नहीं और न ही मैं ऐसा करके महान सिख कौम की करोपी मोल ले सकता हूं।"

सरदार निहाल सिंघ अर्थात भाई महाराज सिंघ जी के प्रारंभिक जीवन के बारे में बहुत ज्यादा पता नहीं लगता। प्राचीन इतिहास को देखने पर केवल यही पता चलता है कि वे बाबा सिंघ जी नौरंगाबाद वालों के सेवक थे। बाबा बीर सिंघ जी का महाराजा रणजीत सिंघ के समय में व उस के बाद भी सिखों में अच्छा मान सम्मान था। बाबा जी के डेरे समय में व उस के बाद भी सिखों में अच्छा मान सम्मान था। बाबा जी के डेरे पर आने से पूर्व, वे अपने गांव रुबे के समीप ठीकरीवाले के निर्मलों के डेरे पर भी कुछ समय तक टिके रहे। बाबा जी के आदर्श व्यक्तित्व पर निहाल सिंघ जी इतने प्रभावित हुए कि वे तन मन से डेरे की ही हो कर रह गए। उन की निष्काम सेवा, मीठी सुरीली आवाज व रूहानी शोहरत ने जल्द ही सब का मन मोह लिया। उन को सम्मान सहित सारे लोग महाराज जी कह कर बुलाया करते थे। यह महाराज संबोधन बाद में जा कर अंग्रेजों के लिए महाराज सिंघ बन गया। महाराजा रणजीत सिंघ के अचानक कालवास हो जाने के उपरांत सिख राज्य जिस तेजी से डोगरों व अंग्रेजों की कुटिल नीति का शिकार हुआ, उस ने हर सच्चे सिख को चिंतातुर कर दिया। बाबा जी भी एक सच्चे पंथ दर्दी की भांति यह तमाशा शांतिपूवर्क नहीं देख सकते थे। उन्होंने डोगरों की कुटिल चालों को नकेल डालने के लिए सरदारों को संगठित करना शुरु कर दिया। रूहानी कृपा का यह केंद्र अब सुझवान व पंथ दर्दी शूरवीरों से भरने लगा। डोगरे इस बात को कब सहन कर सकते थे। राजा हीरा सिंघ, जो नाबालिग दलीप सिंघ की राजगद्दी पर बैठते समय राजकाल के सारे अधिकार संभाले बैठा था, डेरे पर हो रही इस सरगर्मी को दबाने के लिए सेना चढ़ा कर ले आया। बाबा बीर सिंघ की इस सेना के साथ हुई मुठभेड़ मे शहीद हो गए।

बाबा जी की शहीदी की खबर जल्द ही दूर – दूर तक फैला गई। लोगों के जज़्बात भड़क उठे। बाबा जी जैसे गुरसिख को हाथ डालने वाले राजा हीरा सिंघ को जल्द ही अपने किये का फल मिल गया। बाबा जी की शहीदी के उपरांत इस डेरे की अगवाई भाई महाराज सिंघ जी ने संभाल ली। 1846 की लड़ाई तक वे इस डेरे पर रह कर जैसे तैसे अपने कर्तव्य को निभाते रहे। उसके पश्चात उन्होंने देख लिया कि अब पानी पुल से निकल गया है। अंग्रेज शासक से सीधे दो हाथ करने होंगे। उन्होंने नौरंगाबाद छोड़ कर अमृतसर आ टिकाना किया और गांव में दौरा करके अपने मिशन की पूर्ति हेतु लोगों को संगठित करना आरंभ कर दिया।

उनकी सरगर्मियों का परिणाम था कि प्रेमा साजिश रची गई परन्तु दुरभाग्य वश, इस साजिश का भेद खुला। इस साजिश का उद्देश्य रैजीडैंट हैनरी लारस, देश द्रोही डोगरों तथा उनके साथियों को 21 अप्रैल 1847 को शालामार बाग में होने वाली एक मीटिंग के समय कत्ल करना था। इस लाहौर दरबार के कुछ प्रभावशाली सिख सरदार व महारानी जिंदा शामिल थीं। इन लोगों को न केवल भाई महाराज सिंघ जी का आशीर्वाद प्राप्त था बल्कि उन्होंने इन को अपने आशीर्वाद स्वरूप एक कृपाण भी प्रदान की थी। दुर्भाग्य से इस साजिश का अंग्रेजों को समय पर पता चल गया। उन्होंने साजिश करने वालों को पकड़ने के लिए करड़ी कारवाई आरंभ कर दी। सारे पंजाब में दमन चक्र शुरू हो गया। दोशियों और उन को पनाह देने वालों को कैद करने और उन की जायदाद कुर्क करने के आदेश सरकार ने जारी कर दिए।

स्वाभाविक था कि भाई महाराज सिंघ जी की ओर भी सरकार का ध्यान जाता। अंग्रेज रैजीडैंट ने भाई साहिब के बहुत से साथी और निज़ी सेवक पकड़ लिए। भाई साहिब का पता टिकाना पूछने के लिए इन को कई प्रकार के कष्ट दिए गए। पर जब सख्त मार पीट से भी किसी ने कुछ न बताया तो रैजीडैंट ने सारे माझा को छान मारने को आदेश दिया। अमृतसर में भाई साहिब की सारी जायदाद ज़प्त कर ली गई। उन को पकड़ने के लिए दस हज़ार रूपए का इनाम रखा गया। सरकार का कोई भी कदम भाई साहिब को अपनी राह पर आगे बढ़ने से न रोक सका। वह गांव – गांव में अपने मिशन की पुर्ति हेतु भ्रमण करते रहे।

प्रेमा साजिश के असफल होने के तुरंत पश्चात, दीवान मूल राज ने मुल्तान में अंग्रेजों के विरूद्ध बगावत कर दी। दीवान मल का होनहार लड़का दीवान मूल राज अपने पिता ही भांति ही सिख राज को दिलो जान से प्यार करता था। कुदरती बात थी कि अंग्रेजों की कुटिलनीति के कारण उस के सबंध अंग्रेजी सरकार से बिगड़े। अप्रैल 1848 में जब दीवान मूल राज ने, अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध खुले आग बगावत की तो महारानी जिंदां ने उस की हर संभव मदद की । अंग्रेजों ने उस को देश निकाला दे दिया। इस अवसर को उचित जान कर भाई साहिब ने माझा में बगावत का झंडा खड़ा कर दिया। उन्होंने दुआबा की उत्तर दिशा की ओर भी कई जिलों का दौरा किया। हर स्थान पर उनका अच्छा स्वागत हुआ। हजारों लोग उनके झडे के नीचे एकत्र हो गए। कुदरती था कि दीवान मूल राज इस अवसर पर उन का सहयोग लेता। उस ने भाई साहिब के पास स्वयं अपने आदमी भेजे। संदेश मिलने पर भाई साहिब ने मुल्तान की ओर कूच कर दिया।

भाई साहिब के समर्थन व सरगर्म सहायता के कारण दीवान मूल राज की बगावत अंग्रेजों के लिए बहुत बड़ी सिरदर्दी बन गई। बागियों के हौंसले बुलंद हो गए। सारी तरफ यह अफवाह फैल गई कि महाराजा दलीप सिंघ को अंग्रेजी प्रभाव से मुक्त करके मुल्तान पहुंचा दिया गया है। अंग्रेजों ने भाई साहिब को पकड़ने के लिए अपनी सरगर्मी और तेज कर दी। कैप्टन कौकस नाम का एक अंग्रेज दो अतिरिक्त पल्टनें, एक रैजीमैंट व तोपखाने सहित उनके पीछे लगाया गया। सरकार ने आदेश दिया कि जो भी भाई साहिब को पनाह देगा उसके नाक, कान काट दिए जायं और जायदाद कुर्क कर ली जाय। भाई साहिब हर स्थान पर अंग्रेजी पुलिस व सेना के संग छिपा – छिपाई खेल कर हाथ से निकल जाते। कई बार अंग्रेजों को भाई साहिब के पकड़े या मारे जाने का गुमान हुआ परंन्तु हर बार पहचान कराने के पश्चात उनकी आशओ पर पानी फिर जाता। एक बार बाढ़ की चपेट में आई चनाब नदी को पार करते समय उनके नदी में डूब जाने की खबर बहुत विश्वास से अंग्रेज रैजीमैंट को दी गई पर कुछ ही समय के उपरांत इस के झठे होने का पता लगा। सरकार को बहुत नमोशी हुई।

मुल्तान की बगावत के उपरांत भाई साहिब ने जसंव और कट्ट लहर के राजपूत राजाओं, ऊना के बाबा विकरम सिंघ, करतारपुर के लधा सिंघ, नूरपुर के राम सिंघ और रंघड़ नंगल के लाल सिंघ व अरजन सिंघ को साथ ले कर नये सिरे से अंग्रेजों के विरूद्ध बगावत को संगठित किया। इस बगावत को भी अंग्रेजों ने सरव्ती से कुचल दिया।

इसके उपरांत भाई साहिब ने अटारी वाले सरदारों की सहायता करके अंग्रेजों के विरुद्ध नई लहर चलाई। सरदार चत्तर सिंघ अटारी वाला इस बगावत के अग्रणी बने। राम नगर, चेलियां वाला तथा गुजरात की सभी लड़ाईयों में भाई महाराज सिंघ अपनी काली घोड़ी पर बैठ कर बहादुरी से लड़े। हजारों वालंटीयर उन की प्रेरणा के अधीन इन लड़ाईयों में शामिल हुए। चेलियां वाला में अंग्रेजों को जो निराशा भरी हार हुई वह अपनी मिसाल आप ही थी। अंग्रेज कंमाडर गफ को इस हार पर अंग्रेजों ने वापिस विलायत बुला लिया और उस की जगह पर नेपीअर को भेजा। इस सफलता का सेहरा अन्य के साथ भाई साहिब को भी जाता है।

गुजरात की लड़ाई इस बगावत की अंतिम लड़ाई थी। अपने सीमित साधनों के कारण सिख यहां पर हार गए। इस हार के उपरांत अटारी वाले सरदार सहित भाई महाराज सिंघ और बाबा बिकरम सिंघ रावलपिंडी की ओर चले गए। जनरल गिलबर्ट 15000 जवानों व एक भारी तोपखाने सहित उन का पीछा कर रहा था। भाई साहिब ने अटारी वालियां को सलाह दी कि एक बार फिर रावलपिंडी या हसन अब्दाल में अंग्रेजों के साथ दो हाथ किये जाएं। परंतु अटारी वाले अब हौंसला हार बैठे थे। भाई साहिब की सलाह नजरअंदाज करते हुए 14 मार्च 1849 को उन्होंने रावलपिंडी के समीप अंग्रेजों के सामने आत्मसमर्पण करने का फैसला किया। भाई साहिब को अटारी वालिंया से बड़ी आशाएं थी। उन की इस करवाई से वे दुखी तो बहुत हुए, पर उन्होंने हिम्मत न हारी। उन्होंने फैसला कर लिया कि चाहे अकेले ही क्यों न लड़ना पड़े, वे अंग्रेजों के साथ अतिंम सांस तक लड़ेंगे।

अब तक पंजाब में अंग्रेजों का कब्जा लगभग पक्का हो गया था और भाई साहिब के बारे में सरकार चौकन्नी भी बहुत हो चुकी थी। भाई साहिब ने देख लिया कि अपनी गुरीला सरगर्मियों को वे अब पंजाब में सुरक्षित ढंग से नहीं चला पाएंगें इसलिए वे जम्मू की ओर निकल गए और उन्होंने अपने सेवकों को कहा कि अगली हिदायत मिलने तक वे बिखर कर भूमिगत कारवाई जारी रखें। जम्मू से वे भिंबर चले गए और फिर वहां से अखनूर चले गए। यहां से वे देवी वटाला चले गए। घने जंगलों से घिरे होने के कारण उनको यह क्षेत्र अपनी सरगर्मियों के लिए बहुत उचित लगा। उन्होंने देवी वटाला और चंबी के स्थानों पर डेरे रखे। पंजाब तथा जम्मू से सैंकड़ों की सख्या में आजादी के परवाने उनके पास एकत्र होने लगे। भाई साहिब ने अंग्रेजों के विरुद्ध अपना संघर्ष फिर आंरभ कर दिया। जम्मू कश्मीर

के हाकिम इस समय देशद्रोही डोगरे थे। वे भाई साहिब की इस सरगर्मियों को कब देख कर फैसला किया। उन्होंने चंबी के समीप रामनगर के किले पर हमला करके उस को अपने कब्जे में ले लिया। डोगरों ने पूरी शक्ति से भाई साहिब को दबाने का यत्न किया। अगस्त 1849 में भाई साहिब के साथी एक बार फिर बिखर गए और भाई साहिब ने जम्मू कश्मीर छोड़ कर पंजाब में बटाला के समीप जसोवाल में आ डेरा लगाया।

भाई महाराज सिंघ हिम्मत हारने वाले नही थें । उन्होंने सारे पंजाब में अपने साथी फैला दिए ताकि वे अंग्रेजों के साथ हथियारबंद टक्कर के लिए माहौल तैयार कर सकें। उन के सेवक काबुल व कंधार के दूर दराज के इलाके तक ग्रुप बना कर फैल गए। भाई साहिब ने उन को हिदायत दी कि वे आशय की पूर्ति के लिए ग्रंथी सिंघों का सहयोग ले कर सिख जनसाधारण को लड़ाई के लिए लामबंद करें। यही नहीं भाई साहिब ने काबुल के अमीर दोस्त मुहम्मद खान के भाई सुलेमान मुहम्मद खान को भी मदद के लिए संदेश भेजा। स्वंय वह बिजली की तेजी से हुशियारपुर, कपूरथला, अमृतसर के सारे इलाके कुछ ही दिनों में घूम गए। अब उन्होंने सरकारी छावनियों पर आक्रमण करके अंग्रेजों को चने चबाने की खातिर खजाने लूटने की योजना बनाई। भाई साहिब को जनसाधारण की ओर से भरपूर सहयोग मिला। कोई भी दिन ऐसा न होता जब सौ आदमी उनके पास न आता। तभी भाई साहिब को काबुल के अमीर का संदेश मिला कि पठान सिखों की मदद को तैयार है पर पैसे की कमी के कारण वे तुरंत कोई कदम उठाने में असमर्थ हैं।

काबुल से हुई गोल – मोल न ने भी भाई साहिब के मन को विचलित न होने दिया। उन्होंने गुरु ग्रंथ साहिब जी की हजूरी में हुकमनामा लिया और 20 पौष 1849 का दिन होशियारपुर तथा जलंधर की छावनियों पर हल्ले करने के लिए निश्चित कर दिया। यह एलान करके वे टांडा, जहूरा, कंडोला, बालीवाल, आदमपुर, शाम चुरासी आदि के गांवों के दौरों पर निकल गए।

सरकार भी पल पल उन की सरगर्मी पर नजर रख रही थी। उस के जासूस जगह जगह पर उन्हें सुंघ रहे थे। 28 दिसंबर 1849 की शाम को एक जासूस जलंधर के डिप्टी कमिशनर, हैनरी वैनिस्टार्ट की कोठी पर हांफते हुए आया और उसने बताया कि भाई साहिब आदमपुर और शाम चुरासी के बीच एक खेत में छिपे बैठे हैं। मिन्टों में ही डिप्टी कमिशनर ने एक पार्टी सरपट घोड़े दौड़ाते हुए खेतों की ओर भेज दी। भाई साहिब का एक साथी अमीर सिंघ इस मुठभेड़ में मारा गया। भाई साहिब 21 साथियों सहित ग्रिफतार कर लिए गए। दुर्भाग्य से उनके पास आत्म रक्षा के लिए एक ही हथियार नहीं था। ऐसा होता तो शायद स्थिति कुछ और होती।

भाई साहिब की ग्रिफतारी के पश्चात उन की शनाखत करवा कर भी सरकार को मुश्किल से तसल्ली हुई कि यह खतरनाक बागी अब उन की कैद में है। अंग्रेज अधिकारियों को पूरी तसल्ली तब हुई जब उन्होंने देखा कि भाई साहिब को जेल ले जाते समय रास्ते में हर सिख ने सिर झुका कर भाई साहिब का सम्मान किया। ग्रिफतारी की खबर फैलते ही हजारों सिख जेल की सीमा के अंदर एकत्र हो गए। सरकार को भय हो गया। कि यह भीड़ कहीं भाई साहिब को रिहा करवाने के लिए जेल पर हल्ला ही न कर दे। इस स्थिति से निपटने के लिए अंग्रेज प्रशासकीय बोर्ड के आदेशों के अनुसार भाई साहिब को जंजीरों में जकड़ा गया और उन की कैद कोठड़ी के बाहर सख्त दोहरा पहरा लगा दिया गया। यह पहरा दिन रात सरकार के अति विश्वास योग्य व्यक्ति देते थे। घुड़ सवारों का एक विशेष तैयार बर तैयार दस्ता जेल के आस पास चक्कर काटता रहता था। जेल की गारद की नफरी भी बढ़ा दी गई। वफादार यूरोपीयन सिपाहियों के विशेष दस्ते, जलंधर जेल में भेजे गए। फिर भी जिला अधिकारियों के ही नहीं, हिंदुस्तान के मालिक लार्ड डलहौजी की भी सांस सूखती ही रही कि कहीं कोई संकट न खड़ा हो जाय। लार्ड डलहौजी भाई साहिब को जल्दी से जल्दी पंजाब से बाहर निकालने और उनको सख्त से सख्त सजा देने के पक्ष में था। इसलिए उस ने अपने विश्वास पात्र ब्रिगेडियर व्हीलर की ड्यूटी लगाई कि वह जलंधर से भाई साहिब को अपनी हिरासत में ले और उनको अलाहबाद पहुंचा दे जहां से उन को कलकत्ता भेजने के प्रबंध किये जायंगे। 30 जनवरी 1850 को व्हीलर ने डलहौजी के आदेश का पालन कर दिया। भाई साहिब जलंधर से भेज दिए गए। 19 अप्रैल को उन को कलकत्ता पहुंच दिया गया। सारी यात्रा के दौरान भाई साहिब को बेड़ियां पहनाए रखी गई। कलकत्ता के फोर्ट विलीयम में भी उनको कैद करते समय विशेष विश्वासपात्र अफसर, कर्नल वारन की निगरानी में सख्त प्रबंध किये गए। लगभग एक महीने बाद डलहौजी ने भाई साहिब को जलावतन करके सिंघापुर भेजने का आदेश दे दिया। 15 मई को वे समंदुरी जहाज पर चढ़ा दिए गए। गवर्नर जनरल के आदेश के अनुसार उनकी बेड़ियों को तभी उतारा गया जब जहाज दूर गहरे पानी में उतर गया। 9 जून को वे सिंघापुर पहुंचे और फिर सख्त कैद में फेंक दिए गए। हर समय करड़ी निगरानी के बावजूद अंग्रेज अफसर डरते कि भाई साहिब और उनके साथी जेल तोड़ कर भाग न जांय। इसलिए उन को जेल की ऊपर की मंजिल पर कैद किया गया! उनके कमरे की दोनों खिड़कियां ईंटों से चिन कर बंद कर दी गई और बरामदे को एक मजबूत लोहे के दरवाजे से बाकी कमरों से बिल्कुल अलग कर दिया गया।

इस अंधकारमय काल कोठड़ी में दिन रात जंजीरों से जकड़े हुए भाई साहिब की सेहत तेजी से बिगड़ने लगी। कुछ महीनों में ही उन की नजर कमजोर होने लगी। उनको जोड़ों का दर्द होने लगा। भाई साहिब के कभी भी उफ न की। हर अत्याचार को उन्होंने हंसते हुए झेला । अगस्त 1851 की एक चिठ्ठी में सिंघापुर तथा अन्य अधीनस्थ क्षेत्रों के अंग्रेज गवर्नर ने भारत सरकार को लिखा कि जब से भाई साहिब हमारी जेल में आए हैं उनका व्यवहार बिल्कुल ठीक रहा है। जिस तरीके से उन्होंने सभी मुसीबतें व कष्ट झेले हैं और विचलित नहीं हुए, वह सब कुछ सिख गुरूओं द्वारा दर्शाई गई राह के अनुकूल है।

भाई साहिब की सेहत दिनो–दिन गिरती रही। जनवरी 1853 में उन की आंखों की ज्योति बिल्कुल समाप्त हो गई और वे अंधे हो गए। वहां के रेजीमैंट कौंसल ने भारत सरकार को भाई साहिब को कुछ छूट देने के लिए सिफारशि की । उन्होंने कहा कि भाई साहिब को कुछ हवाखोरी के लिए बाहर ले जाना जरुरी है चाहे ऐसा करने के लिए करड़ी निगरानी में ही क्यों न किया जाय। तत्कालीन अंग्रेजी भारत सरकार ने यह मामूली छूट भी देने से मना कर दिया। ऐसे घिनौने वातावरण में कोई कब तक जी सकता है। भाई साहिब अपने जीवन की आहुर्ति सिख राज्य की शमा पर तिल तिल कर देते रहे। 5 जुलाई 1856 को उन की जीवन ज्योति, हमें स्वतंत्रता तथा स्वाभिमान से जीने की प्रकाश ज्योति दे कर सदा के लिए बुझ गई। भाई साहिब का जीवन सिख कौम के लिए हमेशा प्रकाश स्तंभ बना रहेगा।

R R R R R R R

1857 का विद्रोह और सिख

10 मई 1857 को मेरठ के कुछ फौजियों ने अंग्रेज सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया, जो हल्के – हल्के उत्तर प्रदेश के कुछ अन्य हिस्सों की पहली लड़ाई' का नाम भी दिया गया है। भले ही इस विचार को निरपक्ष और जगह प्रसिद्धि के मालिक इतिहासकारों ने नहीं कबूला। भारत के कुछ राजनीतिक लीडरों के इस विद्रोह की हद से ज्यादा प्रशंसा की है और इस को बहुत बढ़ा – चढ़ा कर बयान किया है। ये लोग अपने जुनून में इतने आगे बढ़ गए कि इन्होंने इस विद्रोह में हिस्सा न लेने वाले लोगों को धोखा देने वाले और देश के गद्दार कहने से भी संकोच नहीं किया । पंजाबी, और विशेष कर के सिख इन लीडरों के गुस्से का शिकार हुए।

कुछ लोगों ने कहा है कि 1857 की भारत की आज़ादी के लिए लड़ाई' इस करके फेल हो गई थी, क्योकि सिखों ने धोखा दिया था, और अंग्रेज़ों का साथ दिया था।

सिखों पर विश्वासघाती होने का दोष तभी लग सकता है अगर उन्होंने विद्रोहियों के साथ मिल कर के इस विद्रोह को आरम्भ किया होता और फिर उस से मुँह मोड़ लिया होता, या फिर विद्रोहियों या विद्रोह के काम से बेवफाई की होती। इतिहास इस बात का गवाह है कि सिखों ने न तो विद्रोह को आरम्भ किया था, और ना ही इस में हिस्सा लिया था । विद्रोह फौजियों ने भी विद्रोह आरम्भ करने से पहले न तो सिखों को विश्वास में ही लिया था, और न ही सिखों के साथ कोई सलाह मशवरा ही किया था। उन्होंने तो सिखों को इस विद्रोह में शामिल होने की सूचना भी नहीं दी थी। विद्रोह करने वाले 'पुरबीये सिपाहियों' में इतनी हिम्मत ही नहीं थी कि वह सिखों को विद्रोह में शामिल होने के लिए कहें क्योंकि (पूर्वीयो) उन्होने ही तो पंजाब में से सिख राज को खत्म करने के लिए 1846 – 47 में अंग्रेजों की सहायता की थी और उनके ही प्रयत्नों से 1848 – 49 में अंग्रेज पंजाब पर कब्जा कर सके थे। इसलिए पंजाब के विशेष तौर पर सिखों, के मनों में पुर्बीय सिपाहियों के विरुद्ध नफरत की आग जल रही थी।

सिख पंजाब के इन दुश्मनों के साथ कैसे दे सकते थे। इन्ही लोगों ने मुगल बादशाह, बहादुर शाह दूसरा को राज्य सिंहासन पर बैठाया था। सिख दो शताब्दियों से मुगलों के अत्याचार का शिकार होते आए थे, उन्होंने मुगल सल्तनत का साथ दिया था अब वह (सिख) उस कार्य में हिस्सा कैसे ले सकते थे, जोकि मुगल राज्य को फिर से स्थापित करने में सहायी हो सकता था।

विद्रोहियों की सब से अधिक नाराज़गी ईसाईयों से हुई। मेरठ, दिल्ली और साथ लगते कुछ इलाकों में ईसाई मर्द, औरतें तथा बच्चे कत्ल कर दिए गए। सब से पहले मरने वाला आदमी दिल्ली का ईसाई डॉ. चमन लाल था, जो कि अपनी डिस्पैंसरी के बाहर खड़ा था। विद्रोहियों ने महाजनों तथा बनिए लोगों की दुकानों को भी लूटा और आगज़नी करके तबाह कर दिया। इस लूटमार के सिवाए विद्रोही कोई ऐसा संगठित प्रयत्न न कर सके के जिससे ईस्ट इण्डिया कम्पनी का राज खत्म हो सकता, न ही अंग्रेजों के प्रशासकी प्रबन्ध को कमज़ोर ही कर सके। जिसके साथ कि अंग्रेज़ों का रूतबा खत्म हो सकता।

यह विद्रोह यू. पी. के कुछ पूर्वीयों तक ही सीमित था, जोकि बंगाल आर्मी के सिपाही थे। यह विद्रोह यू. पी. के कुछ और साथ लगते इलाकों तक ही फैल सका, जब कि बाकी के 80% भारत में इसका कुछ भी असर न हुआ। यू. पी. के भी बहुत इलाके थे जो इस विद्रोह से प्रभावित न हुए । इसकी असफलता का कारण, किसी एक इकट्ठे मजबूत संगठन की कमी, योजना के कार्य और विद्रोहियों के अलग – अलग हितों का होना था।

विद्रोही सिपाहियों की प्रारम्भिक कार्य क्षेत्र दिल्ली और नज़दीकी जनता की रूचियों के विरुद्ध ही नहीं था बल्कि गैर – पूर्वी सिपाहियों, राजपूतों, मरहट्ठों, मदरासी, गढ़वाली, डोगरे और पंजाबी मुस्लमानों व सिखों और पठानों की रुचियों के विरुद्ध था, जो कि निर्दोष स्त्रियों और बच्चों के कातिलों (विद्रोहियों) का साथ नहीं दे सकते थें।

1857 का विद्रोह असल में हिन्दुओं और मुसलमान सिपाहियों का अंग्रेजी फौजी अफसरों के साथ फसाद या झगड़ा ही था। यह झगड़ा तब आरम्भ हुआ था जब कि हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों को यह पता लगा कि जो कारतुस उनको दिये जाते थे, उनमें गाय और सुअर की चर्बी है। इन कातरूसों को मुँह से खोलना पड़ता था। धार्मिक जज्बातों के उभरने से हिन्दू और मुसलमान सिपाही इतने जोश में आ गए कि उन्होंने दिल्ली तथा मेरठ में अनेकों लोगों को कत्ल कर दिया। इनका साथ जेलों से रिहा किए गए बदमाशों और अन्य डाकूओं तथा लुटेरों ने दिया।

इन विद्रोहियों ने बादशाह बहादुर शाह दूसरे को, जोर ज़र्बदस्ती के साथ ही अपना नेता बना लिया, जिसके नाम के नीचे वह हिन्दू धर्म तथा इस्लाम की रक्षा के लिए उठ खड़े हुए। इन फसादियों के बहादुर शाह को अपने जुर्मो और बुरे कर्मो पर पर्दा डालने के लिए ही लीडर चुना था। फसादी अपने

बुरे कामों के लिए बहादुर शाह को ही ज़िम्मेदार ठहराते थे, जिसके नेतृत्व में वह चल रहे थे। असल में इन विद्रोहियों (दंगईओं) ने खुले तौर पर बहादुर शाह से हुक्मों की उल्लंघना की और उसके महलों में जाकर उसकी बेज़ती की। बेचारा बहादुर शाह तो उनके हाथों में एक कठपुतली बन कर रह गया था। प्रसिद्ध इतिहासकार आर पी सी. मजुमदार अपनी पुस्तक 'Sepoy Mutiny and Revolt of 1857' के पन्ना 233 लिखता है "दिल्ली में सिपाहियों ने तब तक लड़ने से मना कर दिया जब तक कि उनको योग्य तनखाहें ना दी जाएँगी – यह माँग उन लोगों के स्वभाव से मेल नहीं खाती तो 'आज़ादी की लड़ाई' में लगे हुए हो।

बहादुर शाह खुद हालात का शिकार हुआ पड़ा था। उसने विद्रोह को आरम्भ करने, चलाने या फैलाने में रत्ती भर भी हिस्सा नहीं डाला था। उसको तो विद्रोह की खबर ही तब हुई जब विद्रोही सिपाही उसके महलों तक आ गए और उसको विद्रोह की कमांड संभालने के लिए कहा। बहादुर शाह ने असमर्थता जाहिर की पर विद्रोही सिपाहियों ने उसकी एक ना सुनी। उसने आगरे में लैफटीनैंट गवर्नर को मेरठ में फौजी विद्रोह होने पर विद्रोहियों के दिल्ली में पहुँच जाने की खबर पहुँचाई।

विद्रोहियों ने बुज़ुर्ग और कमज़ौर दिल बादशाह (बहादुर शााह) से मन मर्ज़ी से आदेश जारी करवाए और फिर उसको धोखा दे कर शाहज़ादा अनु बकर को अपना नेता चुन लिया। बहादुर शाह ने अंग्रेजों के साथ गुप्त बातचीत आरम्भ कर दी। और कहा कि अगर अंग्रेज उसके परिवार के जान – माल की रक्षा की गारन्टी दें, उसको पैंशनें तथा अन्य सहायता दें तो वह अंग्रेजों के लिए दिल्ली शहर और किले के दरवाज़े खोल देगा। उसकी मुख्य रानी, जीनत महल ने भी अंग्रेजों को इस शर्त पर सहायता देने की पेशकश की। उसके पुत्र की जान बख्श कर बहादुर शाह का उत्त्राधिकारी मान लिया जाए और मुगल शाहज़ादों ने भी अंग्रेजों को दिल्ली पर कबज़ा करने में अपनी सेवाएं पेश कीं, शर्त यह रखी कि उनके निजी हितों को ध्यान में रखा जाए। अपने शासन के थोड़े समय में ही इन शाहज़ादों ने शहर में लूट मचाई और अपने खज़ानों को लोगों के धन – माल से भरा इस बारे में आर सी मजुमदार लिखता है यह सब कुछ (घटनाएँ) कोई शक नहीं रहने देती कि बहादुर शाह तथा उसके परिवार ने उन विद्रोही सिपाहियों, जिनका कि वह नेता बना था, के साथ ही विश्वासघात नहीं किया, बल्कि पूरे देश के साथ गद्दारी की थी।'

कुछ रजवाड़े – बलभगढ़ का नाहर सिंघ, झझर का नवाब अब्दुल रहमान और तिवाड़ी का राव

तुला राम – एक ओर तो बहादुरशाह और विद्रोही सिपाहियों का साथ दे रहे थे, दूसरी ओर अंग्रेज़ों के साथ गुप्त संधियों के लिए बातचीत कर रहे थे। पर वह अपने उद्देश्यों में सफल नहीं हुए तथा अंग्रेजों ने उन्हें विद्रोही समझ कर, फाँसी चढ़ा दिया।

विद्रोहियों के लीडर भी असल में अपने अपने हितों की रक्षा के लिए लड़ रहे थे, विद्रोह तो एक बहाना था। इनके बारे मोलाना अब्दुल कलाम आज़ाद लिखता है, "कुछ सम्मानजनक व्यक्तियों के बहुत से लीडर अपने निजी हितों के लिए ही ऐसा कर रहे थे (विद्रोह में हिस्सा ले रहे थे) । वह अंग्रेज़ों के विरुद्ध तब तक खड़े नही हुए, जब तक उनके निजी हितों को नुकसान न पहुँचा। जब विद्रोह छिड़ चुका था, तब भी नाना साहिब ने कहा था कि अगर लार्ड डलहौजी के फैसले रद्द कर दिए जाए तथा उसकी (नाना साहिब) की माँगे परवान कर जी जाएँ तो वह अंग्रेज़ों के साथ समझौता करने को तैयार है।

रानी झाँझी का इस विद्रोह में बड़ा जिकर किया जाता है, पर वह भी परस्थितियों (हालातों) के हाथों मजबूर हुई विद्रोह में शामिल हुई थी। ऐसा कोई ऐतिहासिक सबूत नहीं है जिससे पता लगे कि झांसी में फौजी विद्रोह की साज़िश रची हो या विद्रोह को चलाया या तेज किया हो । असल में तो उसने अंग्रेजों को सूचित किया था कि विद्रोहियों ने उस के साथ बुरा सलूक किया है और उसको धन देने कि लिए मजबूर किया है। रानी झाँसी ने अंग्रेज़ को शान्ति बनाए रखने में सहयोग के लिए भी विनती की थी। उसको निर्दोष जान कर ही 'सागर' के कमिश्नर ने झांसी में तब तक राज करने के लिए नियुक्त किया था, जब तक कि अंग्रेज़ वहाँ अपनी हकूमत न कायम कर लें।

पर जब अंग्रेज़ों ने अपना इरादा बदल लिया और रानी झाँसी पर झाँसी में विद्रोहियों का साथ देने का दोष लगाया, तब रानी ने विद्रोह के बारे में अनभिज्ञता प्रकट की और अंग्रेजों की सरकार के प्रति वफ़ादारी जाहिर की। अंग्रेजों ने रानी की इन बातों पर विश्वास नहीं किया और झासी में गदर और कत्लेआम के लिए उसको ही जिम्मेदार ठहराया । इन हालातों में रानी ने अंग्रेजों के साथ लड़ना ही ठीक समझा और जंग में शहीद हो गई।

विद्रोह बिना किसी साज़िश के और हिन्दुओं तथा मुस्लमानों में बिना किसी समझौते के छिड़ पड़ने के कारण हिन्दुओं तथा मुस्लमानों में झगड़ा शुरू हो गया। मेरठ के सिपाही दिल्ली में आए तो भगदड़ मचने के कारण अनेकों ही मुसलमानों के घर लूटे गए और उन पर जुल्म किए गए। प्रतिकर्म में मुसलमानों ने हिन्दुओं के विरुद्ध ज़हाद आरम्भ कर दिया। कुछ चालाक मुस्लमानों ने विद्रोह को,

इस्लामी बादशाह को पुनः स्थापित करने के लिए उपयोग करना चाहा। बरेली, बिजनौर, मुरादाबाद और अन्य स्थानों में हैदरी झंडा लहराया गया – जहादियों ने हिन्दुओं को लूटा तथा कत्ल किया। इस तरह मुस्लमानों तथा हिन्दुओं में फूट पड़ गई। कई जगह हिन्दुओं ने अंग्रेजी सरकार की रक्षा के लिए बिनिति करी और ब्रिटिश हुकूमत की जीत के लिए प्रार्थनाएँ की।

इस तरह 1857 के विद्रोह को अच्छी तरह पढ़ने से पता लगता है कि हर कोई अपने ही हितों के लिए लड़ रहा था, देश की तो किसी को भी चिन्ता नहीं थी। विद्रोहियों का सरदार मुगल राज्य (बहादुर शाह) रानियों, शहज़ादे और विद्रोह के और 'लीडर'– सब को अपने हितों अथवा स्वार्थो की पड़ी हुई थी। अवध के सिपाही अपने राज को स्थापित करने के लिए लड़े, नाना साहिब तथा रानी झाँसी ने अपने ही हकों को सामने रखा। इनके सिवाय कई छोटे मोटे दंगई लोग' जिनमें देश भक्ति की भावना नाम मात्र भी नहीं थी, ने विद्रोह को निजी प्राप्तियों के लिए एक सुनहरी मौके के लिए उपयोग किया। खान बहादुर खान रूहेल खण्ड नायब निज़ाम (वायसराय) बन बैठा। सहारनपुर के बनजारों ने अपना राजा चुनकर स्थानिक प्रशासन संभाला। अलग – अगल जगहों पर गुजरों के कई 'राजे' थे। उन्होंने फतवे (Fatva) को अपना राजा चुन लिया। मथुरा के जिले में एक देवी सिंघ नामक व्यक्ति 14 गाँवों का राजा बन बैठा। इस तरह एक डाकू महिमाजी वादी और एक मराठा बाह्राण बेलसार – धन – सम्मपत्ति की प्राप्ति के लिए विद्रोहियों के साथ मिल गए।

विद्रोही सिपाही तथा उनके नेता विद्रोह के आग को पूरे देश में न फैला सके, बल्कि विद्रोह यू पी. के कुछ इलाकों तक ही सीमित रहा। पंजाब, बंगाल, मद्रास, महाराष्ट्र, गुजरात, सिन्ध, राजस्थान, जम्मू – कश्मीर के लोगों ने इस विद्रोह में हिस्सा न लिया क्योंकि उनको विद्रोहियों के 'मनोरथ' के बारे में शक था। यह बगावत तो पूरी फौज में भी न फैल सकी, बल्कि फौज के एक हिस्से बंगाल आरमी के कुछ सिपाहियों ने ही बगावत की थी। बंगाल आर्मी के बाकी फौजी तो बल्कि अंग्रेजों की ओर से विद्रोहियों के साथ लड़ रहे थे। मद्रास आर्मी तथा बम्बई आर्मी तो बिल्कुल शान्त रही तथा अंग्रेज सरकार की वफादार रहीं।

विद्रोह को चलाने वाले पूर्बी सिपाहियों पर दूसरे प्रान्तों के लोग भला विश्वास भी कैसे कर सकते थे? इन पूर्बीयों ने ही तो महाराष्ट्र, राजस्थान, आसाम के ऊपर अंग्रेज़ी हुकूमत की स्थापना में अंग्रेज़ो का साथ दिया था। यह अंग्रेजों के हाथ ठोके बने और गोरखों, पठानों तथा सिखों को अंग्रेज़ों की हुकूमत के अधीन करने में सहायक हुए । ऐसे देश – द्रोहियों के अन्दर देश प्रेम की भावना का एक दम पैदा हो जाना एक नामुकिन बात थी। असल में इन्होंने देश प्रेम करके विद्रोह नहीं किया था बल्कि धार्मिक भावना के करके किया था।

जैसे कि पहले बताया जा चुका है कि यह पूर्वी सिपाही 1845 – 46 तथा 1848 – 49 की अंग्रेज़ – सिखों की लड़ाईयों में अंग्रेज़ों की ओर से सिखों के साथ लड़े थे। तेज सिंघ और लाल सिंघ भी पूर्वी ही थे, जिन्होंने अंग्रजों के साथ गुप्त इकरारनामे करके अंग्रेज़ – सिखों की लड़ाईयों में सिखो के साथ विश्वासघात किया था। याद रखना चाहिए कि तेज सिंघ उस समय सिख फौजों का कमान्डर – इन – चीढ़ था और लाल सिंघ सिख राज का प्रधान मन्त्री था। इसके इलावा, 1857 में जबकि विद्रोह छिड़ा अंग्रेज आम तौर पर पूर्वी – रैजीमैंटों और पूर्वी सिवल अफसरों की सहायता से ही पंजाब में राज चला गए थे। फिर मुसलमानों के एक हिस्से से विद्रोह को दुबारा से मुगल राज्य की कायमी के लिए उपयोग किया, इस बात को भी सिख सहन नहीं सकते थे। सिखों ने सतारहवीं तथा अठारहवीं सदी में भारी संघर्ष करके और अनन्त शहीदियों प्राप्त करके तो मुगल राज को खत्म किया था, सिख ऐसे राज की पुनः स्थापना में हिस्सा कैसे डाल सकते थे?

इसलिए अन्त में हम ये कह सकते हैं कि सिखों और भारत के अन्य लगभग 80% लोगों ने 1857 के विद्रोह में हिस्सा नहीं लिया क्योंकि: –

(1) विद्रोही फौजी तथा सिपाही देश की आज़ादी के लिए नहीं लड़े बल्कि अपने अपने स्वार्थो के लिए लड़े थे। इस संबंध में प्रसिद्ध इतिहासकार सर जादू नाथ सरकार की सलाह विशेष ध्यान माँगती है। वह लिखता है: –

The Sepoy Mutiny was not a fight for freedom. It was not a rising of the people for polictical self determination, but a conspiracy of mercenary soldiers (only of the North Indian army) to prevent the cunning destruction of their religion by defiling their bodies with pig's lard and covi's fat which were used in lubricating the paper parcels of cartridges.....

'..... A number of dispossessed dynasts, both Hindu and Muslim ex-ploited the well-founded caste-suspicions of the Sepoys and made these simple folk their cats-paw in a gamble for recovering their thrones. The last scions of the Delhi Mughals or the Oudh Nawabs and the Peshwa, can by no ingenuity be called fighter for Indian freedom.

(Sri Jadunath Sarkar, Hindustan Standard, Puja Annual 1956 P-22)

मौलाना अबदुल कालम आज़ाद ने भी इसी तरह के ख्याल प्रकट किए है। वह कहते है: –

"In the light of available evidence, we are forced to the couclusion that the uprising of 1857 was not the result of careful planning not were there any master-minds behind it.'

और: –

'As I read about the events of 1857, I am forced to the conclusion that the Indian national character had sunk very low. The leaders of the revolt could never agree. They were mutually jealous and continually intrigued against one another... In fact these personal jealousies and intrigues were largely responsible for the Indian defeat."

(Surendra Nath Sen, Eighteen Fifty-seven, Publication Division Govt. of India, New Delhi, 1957)

(1) पूर्वी सिपाही जिन्होंने विद्रोह आरम्भ किया था, शक्की किरदार के मालक थे। कुछ समय पहले ही उनकी सहायता के साथ अंग्रेज सिखों, गोरखों, मरहट्ठों पठानों तथा आसाम वासियों पर हुकूमत करने में सफल हुए थे। उनका साथ कौन देता?

3. कुछ विद्रोही मुस्लमान दुबारा से सारे देश में मुगल हुकूमत कायम करना चाहते थे। इस देश के लोग बीते समय में मुगल अत्याचारों का स्वाद चख चुके थे। वह दोबारा मुगल राज्य की स्थापना नहीं चाहते थे। सिखों ने तो कुर्बानीयाँ देकर मुगल राज समाप्त किया था। वे मुगल राज्य की पुन: स्थापना के ख्याल से भी नफरत करते थे।

4. विद्रोही सिपाहियों के कारण ही दिल्ली में लूटमार तथा आगज़नी की घटनाएँ हुई। हिन्दुओं तथा मुस्लमानों में फसदा हुए, जो बाद में यू. पी. के अन्य हिस्सों में भी फैल गए। ऐसा विद्रोह जिसने हिन्दूओं मुस्लमानों को भी आपस में लड़ाया, उसमें वह कैसे शामिल हो सकते थे?

R R R R R R R